१८५७ का गदर और मिर्जा गालिब

डॉ. इशरत बी. खान

भारत की पहली बड़ी स्वतंत्रता की लड़ाई को अंग्रेजों और उनके पिट्ठुओं ने जानबूझकर और दूसरे लोगों ने बिना सोचे-समझे गदर कहा है। चूँकि इस युद्ध में अंग्रेज सफल हो गये थे इसलिये उन्होंने और उनकी चाटुकारिता में कुछ हिन्दुस्तानियों ने भी स्वतंत्रता के इस संग्राम में भाग लेने वाले वीरों के बारे में वास्तविकता को छुपाया और इसको दूषित करके सामने लाये।

जब कोई देश किसी दूसरे देश पर अधिकार कर लेता है तो गुलाम कौम पराधीनता की जंजीरें तोड़ने का प्रयास करती है। इस प्रयास और विदेशी सरकार के शोषण के मध्य सीधा संबंध और सम्पर्क होता है। यह प्रयास यदि सफल हो गया तो क्रांति कहलाती है। यदि असफल हो गया तो फिर गदर कहा जाता है। इसी कारण भारत की पहली बड़ी स्वतंत्रता की लड़ाई को अंग्रेजों और उनके पिट्ठुओं ने जानबूझकर और दूसरे लोगों ने बिना सोचे-समझे गदर कहा है। चूँकि इस युद्ध में अंग्रेज सफल हो गये थे इसलिये उन्होंने और उनकी चाटुकारिता में कुछ हिन्दुस्तानियों ने भी स्वतंत्रता के इस संग्राम में भाग लेने वाले वीरों के बारे में वास्तविकता को छुपाया और इसको दूषित करके सामने लाये।

सन् १८५७ के गदर का प्रभाव तो भारतव्यापी रहा था, लेकिन इसके मुख्य केन्द्र में मेरठ, अवध और दिल्ली थे। भारतवासी १८५७ के गदर के सच्चे गवाह थे और उन्होंने इसकी त्रासदी को झेला था।

दिल्ली तो शासकों, साहित्यकारों और व्यापारियों का गढ़ था। अनेक उर्दू कवि इस समय दिल्ली के दरबारों से संबंध बनाये हुए थे। इन्हीं में उर्दू के प्रसिद्ध शायर गालिब थे। मिर्जा गालिब सन् १८५७ के हंगामे में शुरू से आखिर तक दिल्ली में ही रहे। जाहिर है वे १८५७ के गदर के चश्मदीद गवाह हैं। उस जमाने के हालात उन्होंने अपने फारसी ग्रंथ 'दस्तंबू' में लिखे हैं। इस दृष्टि से यह दिल्ली की बगावत से संबंधित, कतिपय घटनाओं के लिये एक प्रामाणिक और संदर्भ ग्रंथ रहा है।

१८५७ का विद्रोह मूल रूप से जनसाधारण का विद्रोह था। इस वर्ग ने जोर-शोर से इस क्रांति में भाग लिया था... उनमें कुछ कर गुजरने की अदम्य लालसा थी। इस संदर्भ में गालिब लिखते हैं... "हर तरफ से फौजें जमा होना शुरू हो गयीं और इसी धरती (दिल्ली) की ओर रवाना हो गयीं। ...बस, यह इस जमाने की एक अजीब स्थिति है।"[१]

"अब दिल्ली के अन्दर और बाहर लगभग पचास हजार सवारों और पैदल की फौज पड़ी हुई है।"[२]

भारतीयों में प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के लिये एक अजब तरह का जोश था जिसके सामने ब्रिटिश सेना भी डिग नहीं सकी। इसका उल्लेख भी गालिब इस तरह करते हैं...

"दूर-दूर के शहरों से खबरें आयीं थीं कि विभिन्न सेनाओं के विद्रोहियों ने घर-छावनी में अफसरों की हत्या कर दी है।"[३]

इसी के साथ भारतीय सैनिकों ने ब्रिटिश सेना का डटकर मुकाबला किया... लेकिन उन्होंने अन्त तक हार नहीं मानी। इस संबंध में गालिब लिखते हैं... "रात-दिन दोनों तरफ से गोलाबारी होती है जैसे ऊपर से पत्थर बरस रहे हों। मई-जून की गर्मियाँ हैं। धूप की तेजी रोज-रोज बढ़ती जा रही है। विभिन्न स्थानों से आये हुए सिपाही दिन चढ़े शेरदिल अंग्रेजों से लड़ने के लिये जाते हैं और सूरज डूबने से पहले ही वापस आ जाते हैं।"[४] परन्तु अपने देश के कुछ गद्दारों के कारण यह क्रांति सफल नहीं हो पायी। इस गदर के दौरान ब्रिटिश सरकार का जुल्म इतना बढ़ गया कि उनका विवेक ही समाप्त हो गया। इन्हीं लूटमार, हत्याकांड को दर्शाते हुए गालिब लिखते हैं-

"हकीम अहसनल्ला खाँ अंग्रेजों के खैरख्वाह और तरफदार हैं... उनका घर, जो अपनी सुंदरता और सजावट में चीन के किसी ललितकला मंदिर के समान था, लूट लिया गया। छत को आग लगा दी गई।"[५]

"विजेताओं ने रास्ते में जिसको भी पाया, कत्ल कर दिया। शहर के आली खानदान और मान-मर्यादा वाले व्यक्ति अपनी इज्जत-आबरू की दौलत को बचाने के लिये घरों के दरवाजे बंद करके बैठे रहे।"[६]

इन परिस्थितियों को देखते हुए गालिब इसे हाकिमों का क्रोधाग्नि (शोला-ए-गजब) नाम दिया है।

ब्रिटिश सरकार के इस अमानवीय व्यवहार को देखकर गालिब का दिल बुरी तरह से टूट गया था जिसका प्रमाण प्रस्तुत पंक्तियाँ देती हैं- "शहर मुसलमानों से खाली हो गया है। लोगों के घरों में रात को चिराग नहीं जलता और किसी घर से धुआँ निकलता दिखाई नहीं देता।"[७]

'गालिब' ने १८५७ के गदर को अपनी आँखों से देखा है, अनुभव भी किया है। ब्रिटिश सरकार के व्यवहार से वे कहीं क्षुब्ध भी हैं तो कहीं आक्रोश से भरे भी हैं। इन सबके बावजूद ब्रिटिश सरकार की वे तरफदारी भी करते दिखाई देते हैं तो कहीं भारतीय क्रांतिकारियों के लिये अपशब्दों का प्रयोग भी करते हैं। हो सकता है गालिब ने यह सब विवशता से किया हो.. वे लिखते हैं... "नमकहरामों ने खुल्लमखुल्ला बगावत का शोर मचा रखा है।"[८]

जनता के इस आंदोलन से हिन्दुस्तानी रियासतों के शासक बुरी तरह से घबरा गये। इसका शासकों पर दूरगामी प्रभाव पड़ा और वे अंग्रेजों की गुलामी और खुशामद पहले से ज्यादा करने लगे। इस संदर्भ का एक उद्धरण प्रस्तुत है। जिसका उल्लेख गालिब ने 'दस्तंबू' में किया है। "खानबहादुर खाँ, गुमराह, जो प्रसिद्धि चाहता था और जो बरेली में कुछ लश्कर एकत्र करके सरदार बन बैठा था, एक-सौ-एक अशरफियाँ, चाँदी के साज-सामान से सजा हुआ हाथी और घोड़ा बादशाह की खिदमत में भेजा।"[९]

इसके अतिरिक्त गालिब के पत्र उर्दू-साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। इन पत्रों में गालिब का बाह्य एवं आंतरिक व्यक्तित्व झाँकता हुआ दिखाई देता है। १८५७ के गदर ने उनके जीवन को किस प्रकार अस्त-व्यस्त कर दिया था इसका उल्लेख वह अपने अनेक पत्रों में करते हैं। गदर के दौरान गालिब के कई करीबी परिवार के सदस्य, दोस्त और शागिर्द आदि की हत्या की गई, कुछ के घरों को आग लगाई गई। उनको अंग्रेजी फौजों ने बुरी तरह से लूटा। इस कत्लेआम, तबाही और बरबादी से गालिब टूट गये। अपने दुख-दर्द और टूटन को पत्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। इस संदर्भ में एक उदाहरण दृष्टव्य है। यूसुफ मिर्जा को पत्र लिखते हुए इन दुख-दर्दों का जिक्र इस प्रकार किया है-

"मेरा हाल सिवाये मेरे खुदा और खुदाबन्द के कोई नहीं जानता। आदमी कसरतेगम से सौहार्द हो जाते हैं, अक्ल जाती रहती है। अगर इस हुजूमे कसरत में मेरी कुव्वते मुतफक्केरा में फर्क आ गया हो तो क्या अजब है, बल्कि उसका बावर न करना गजब है। पूछो कि गम क्या है, गमे मर्ग, गमे फिराक, गमे रिज्क, गमे इज्जत, गमे मर्ग है। किलए नामुबारक से कता नजर करके अहले शहर का गिनता हूँ, मनजरूद्र दौला, मेरा नासिरउद्दीन, मिर्जा आशूर बेग, मेरा भाँजा, उसका बेटा अहमद मिर्जा उन्नीस बरस का बच्चा मुस्तफा खाँ, इब्ने आजमद्र दौला, उसके दो बेटे इस्तेजा खाँ और मुर्तजा खाँ, काजी फैजुल्लाह क्या मैं उनकी अपने अजीजों के बराबर नहीं जानता था, ऐ लो भूल गया हकीम रजीउद्दीन खाँ, मीर अहमद, हुसैन मैकश, अल्लाह अल्लाह उन लोगों को कहाँ से लाऊँ।"[१०]

गालिब द्वारा लिखे गये इस तरह के अनेकानेक पत्रों का महत्व अब साहित्यिक हो चला है, जिसके अंतर्गत ये वर्णन और टिप्पणियाँ जहाँ उन्नीसवीं सदी का आँखों देखा इतिहास बयान करती हैं वहीं गालिब की कविताओं के बारे में भी मूल्यवान अर्थसंकेत छोड़ती हैं। दोनों को मिलाकर विचार करें तो ये टिप्पणियाँ १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की परिघटना को अपने ढंग से सामने लाती हैं जहाँ देशज जीवन, शासन तंत्र, निर्धनता, अशिक्षा, सामाजिक असंतोष आदि की मिश्रित तस्वीर अपनी पूरी संश्लिष्टता में आकार ग्रहण करने लगती है।

गालिब के पत्र उर्दू-साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। इन पत्रों में गालिब का बाह्य एवं आंतरिक व्यक्तित्व झाँकता हुआ दिखाई देता है। १८५७ के गदर ने उनके जीवन को किस प्रकार अस्त-व्यस्त कर दिया था इसका उल्लेख वह अपने अनेक पत्रों में करते हैं।

संदर्भ सूची

१. अल्ताफ हुसैन 'हाली', गालिब, बहादुरशाह जफर
२. आलोचना : जनवरी-मार्च १९६९, पृ. २८
३. वही : पृ. २८
४. वही : पृ. २९
५. वही : पृ. ३०
६. वही : पृ. ३०
७. वही : पृ. २८
८. वही : पृ. २८
९. वही : पृ. २८
१०. नमिता सिंह (सम्पादिका) : वर्तमान साहित्य : नवम्बर-दिसम्बर, पृ. ५२

●

रीडर हिन्दी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय